|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

3/3 (श्लोक 16-34), शनिवार, 23 दिसंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/eyLNYOCoRfw

अनन्य भाव से भगवान की भक्ति करना

आज के सत्र का शुभारम्भ गुरु वन्दना और दीप प्रज्वलित करके हुआ। आज से पाँच हजार एक सौ साठ वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र के मैदान पर एक अद्भुत प्रसङ्ग घटा, जब मानव जीवन के सम्पूर्ण कल्याण के लिए अर्जुन ने भगवान के सामने कुछ शङ्काएँ रखीं। अगर शङ्काएँ अर्जुन ने अपने लिए रखी होतीं तो भगवान उसका समाधान किसी भी प्रकार से दूर कर सकते थे, लेकिन ये बात निश्चित है कि भगवान ने भगवद्गीता का उपदेश अर्जुन की शङ्काओं के समाधान के लिए नहीं दिया क्योंकि उसके समाधान के लिए भगवान को भगवद्गीता कहने की आवश्यकता बिल्कुल भी नहीं थी। भगवान और अर्जुन का सम्बन्ध इतना गहरा है कि उसके लिए भगवान को युद्ध के मैदान में सांख्य योग, ज्ञान योग और राजविद्याराजगुह्य योग कहने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं थी। भगवान से कोई भूल भी नहीं हो सकती क्योंकि कोई भी युद्ध के मैदान में ज्ञान व ब्रह्म की बातें नहीं करेगा। यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि यह गीता का उपदेश भगवान ने अर्जुन को निमित्त बनाकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए कहा -

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

गाय के दूध के थनों से बाहर आने के लिए बछड़ा माध्यम बनता है क्योंकि गाय के दूध का पान बछड़ा तो थोड़ा करता है शेष दूध ग्वालिया दुह लेता है। गाय का दूध का दुहने के लिए पहले बछड़े को उसके पास ले जाना पड़ता है क्योंकि गाय सीधे दूध नहीं देती है। बछड़े की ममता के कारण गाय के थनों में दूध उतर आता है। भगवान ने भी पार्थ रूपी बछड़े को निमित्त बनाकर गीता रूपी दुग्ध अमृत मानव मात्र के लिए उपलब्ध कराया।

आज हम धन्य हैं जो गीता जयन्ती के अवसर पर गीता का चिन्तन कर रहे हैं। एक श्रेष्ठ सन्त जब सङ्कल्प करता है और उसमें भगवान की कृपा भी जब निमित्त बनकर जुड़ जाती है तब चमत्कार घटते हैं। यह हम प्रतिदिन देखते हैं। यह नवम् अध्याय बहुत गूढ़ और महत्वपूर्ण अध्याय है। भगवान, किस प्रकार ब्रह्म की सत्ता है? ब्रह्माण्ड की सत्ता है? जीव की सत्ता है? आसुरी और दैवीय प्रकृति क्या है? इन सब का विश्लेषण किया और गूढ़ वर्णन सोलहवें श्लोक में कर रहे हैं।

9.16

अहं(ङ्) क्रतुरहं(यँ) यज्ञः(स्), स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यम्, अहमग्निरहं(म्) हुतम्॥9.16॥

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ (और) हवन रूप क्रिया भी मैं हूँ। जानने योग्य पवित्र, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत का पिता, धाता, माता, पितामह, गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान (भण्डार) (तथा) अविनाशी बीज (भी मैं ही हूँ)। (9.16-9.18)

विवेचन:- भगवान इस श्लोक में हवन, यज्ञ, स्वधा, औषध, घृत की बातें कर रहें है पर भगवान की बातें बड़ी गूढ़ होती हैं क्योंकि भगवान तो उत्तम वक्ता हैं और जो भी बातें कहते हैं, वो आगे पीछे के सूत्रों को जोड़ कर कहते हैं। दूसरे अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा है:-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥ (१६)

अर्जुन, असत् वस्तुओं की सत्ता नहीं है और सत् वस्तुओं का अभाव नहीं है इस प्रकार दोनों का तत्त्वज्ञानी लोगों के द्वारा देखा गया। असत् से दृष्टि हटती नहीं है और सत् पर दृष्टि टिकती नहीं है। असत् पर दृष्टि हटाने के लिए और सत् पर दृष्टि टिकाने के लिए, भगवान ने नया उदाहरण रच दिया। क्रतु और हवन दो चीज़ है। जो वैदिक रीति से किया जाता है, वह क्रतु है और स्मार्त रीति से किए जानी वाली क्रिया को हवन कहते हैं अर्थात् वैदिक परम्परा से किए जाने वाले हवन को क्रतु कहते है और स्मार्त परम्परा से किए जाने वाले हवन को यज्ञ कहते हैं।

भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा (पितरों को अर्पण किए जाने वाला अन्न जैसे जौ, तिल आदि) मैं हूँ। औषधि से तात्पर्य है जो तिल, जौ, छुआरा आदि के द्वारा सामग्री बनाई जाती है, वो भी मैं ही हूँ। मन्त्र, जो हवन करते समय बोले जाते हैं, वह भी मैं हूँ। घृत मैं ही हूँ, अग्नि भी मैं ही हूँ, हुतम्, जो हवन रूपी क्रिया है, वह भी मैं ही हूँ।

भगवान अर्जुन को यह कहना चाहते हैं कि मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी घट रहा है, या करने वाला, या कराने वाला, क्रिया, जो उसकी सामग्री, जो अग्नि उत्पन्न होती है, वह सब मैं ही हूँ अर्थात् डालने वाला, डाला जाने वाला, जो प्रकट होता है और जो प्राप्त करता है वह सब मैं ही हूँ। यहाँ भगवान हवन रूपी क्रिया का सिर्फ उदाहरण दे रहे है। इसके माध्यम से भगवान यह कहना चाह रहे हैं कि ब्रह्माण्ड में जितनी भी क्रिया हो रही है, उनका हेतु कारक मैं ही हूँ। इस ब्रह्माण्ड में जितने भी कारक हैं उनका हेतु मैं हूँ। क्रियाओं को अर्पित करने वाला भी मैं हूँ और क्रियाओं को प्राप्त करने वाला भी मैं ही हूँ।

9.17

पिताहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः।
वेद्यं(म्) पवित्रमोङ्कार, ऋक्साम यजुरेव च।।9.17।।

विवेचन:- भगवान कहते हैं कि हे! अर्जुन मैं ही सबको धारण करने वाला हूँ, कर्मों का फल देने वाला हूँ। मैं ही पिता हूँ, मैं ही माता हूँ और मैं ही पितामह हूँ। भगवान को पितामह इसलिए कहा गया, क्योंकि ब्रह्मा को प्रजापति, परमपिता कहते हैं और ब्रह्मा जी की उत्पत्ति भगवान के नाभि कमल से हुई। इस प्रकार ब्रह्मा जी के पिता भगवान हुए और पिता के पिता को पितामह कहते है, इस प्रकार भगवान को पितामह कहते हैं।

सामान्य तौर पर चार वेदों का उल्लेख होता है, लेकिन वास्तव में वेद एक ही है। वेदों के मन्त्रों को ऋचाएँ कहते हैं और जो नियत अक्षरों वाली ऋचाएँ होती है। उन्हें ऋग्वेद कहा गया है। इनमें अनष्टुप छन्द, त्रिष्टुप छ्न्द जैसे आठ अक्षर के मन्त्र, ग्यारह अक्षरों के मन्त्र वाले एक ही पद्धति के श्लोक आते हैं। जो ऋचाएँ गायी जा सकती है, उन्हें सामवेद कहा गया। जो ऋचाएँ अनियत अक्षर वाली हैं, अर्थात् जिनका कोई पैटर्न नहीं है। ऊपर आठ अक्षर हैं, नीचे ग्यारह अक्षर हैं उनको यजुर्वेद कहा गया है।

जिसमें लौकिक संसार के पालन की विद्या है जैसे खाना बनाना, भवन निर्माण करना, अस्त्र-शस्त्र बनाना इस प्रकार की चौंसठ कलाएँ वेदों में आती है और सारी विद्याओं को अथर्ववेद कहा गया है। भगवान ने इस अध्याय ने सिर्फ तीन वेदों के बारे में ही कहा है। इस अध्याय में राजविद्या को लौकिक विद्या से अलग बताया है। भगवान ने इस अध्याय में अथर्ववेद की उपेक्षा की है क्योंकि ब्रह्म ज्ञान में इन कलाओं का लेना देना नहीं है। इसलिए भगवान कहते है कि वेद मैं ही हूँ अर्थात् ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद मैं ही हूँ।

9.18

गतिर्भर्ता प्रभुः(स्) साक्षी, निवासः(श्) शरणं(म्) सुहृत्।
प्रभवः(फ्) प्रलयः(स्) स्थानं(न्), निधानं(म्) बीजमव्ययम्।।9.18।।

विवेचनः- भगवान कहते हैं हे अर्जुन! प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण पोषण करने वाला, सबका स्वामी शुभाशुभ फल को देखने वाला, सबका उपकार करने वाला, सबकी उत्पत्ति और प्रलय का हेतु भी मैं हूँ। सभी का अविनाशी बीज कारण भी मैं ही हूँ।

9.19

तपाम्यहमहं(वँ) वर्षं(न्), निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं(ञ्) चैव मृत्युश्च, सदसच्चाहमर्जुन॥9.19॥

हे अर्जुन ! (संसार के हित के लिये) मैं (ही) सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं (ही) जल को ग्रहण करता हूँ और (फिर उस जल को) (मैं ही) वर्षा रूप से बरसा देता हूँ (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् (भी) मैं ही हूँ।

विवेचनः- भगवान कहते हैं कि सूर्य के रूप में मैं ही तपता हूँ। सूर्य के पास जो गर्मी है, वह अलग से नहीं आ रही। मैं ही वर्षा को आकर्षित करता हूँ। मैं ही उसको बरसाता हूँ। मैं ही अमरत्व हूँ, मैं ही मृत्यु हूँ। सत्, असत् भी मैं ही हूँ।

9.20

त्रैविद्या मां(म्) सोमपाः(फ्) पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं(म्) प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्,
अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।9.20।।

तीन वेदों में कहे हुए सकाम अनुष्ठान को करने वाले (और) सोमरस को पीने वाले (जो) पाप रहित मनुष्य यज्ञों के द्वारा (इन्द्ररूप से) मेरा पूजन करके स्वर्ग-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं, वे (पुण्यों के फलस्वरूप) पवित्र इन्द्रलोक को प्राप्त करके (वहाँ) स्वर्ग में देवताओं के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

विवेचनः- जो तामसिक लोग होते हैं, वो अपने तामसिक पदार्थो को सात्त्विक पदार्थों से जोड़ देते हैं। हमारी मदिरा भी सोमरस ही है क्योंकि एक बार पीने से भूख-प्यास नहीं लगती और ये भी नहीं पता चलता कि कहाँ पर पड़े हैं। उनको उसे पी कर ऐसा लगता है कि वो स्वर्ग लोग में आ गए और धीरे-धीरे मनुष्य मदिरा को सोमरस ही कहने लगे परन्तु मदिरा का सोमरस से कोई सम्बन्ध नहीं है। सर्प के आकार की एक सोमवल्ली लता होती है। ये बड़ी दुर्लभ है। हमारे ऋषि मुनि इसका बड़ा उपयोग करते थे। इस लता को उगाने के लिए इसे पारे की भस्म मिलाकर बोया जाता था। इसकी विशेषता यह होती है कि एकम् से अमावस्या तक इसकी एक-एक पत्ती गिरती जाती है और फिर एकम् से पूर्णमासी तक इसकी एक-एक करके पन्द्रह पत्तियाँ निकलती हैं और हर पत्ती के ऊपर एक-एक गाँठ निकलती रहती है। इस गाँठ का रस इतना शक्तिशाली होता है कि ऋषि लोग जब उस गाँठ का सेवन करते थे तो उन्हें एक वर्ष तक भूख और प्यास नहीं लगती थी।

यह देवताओं के सेवन के लिए स्वर्गलोक की लता थी, जिसे ऋषि लोग धरती पर लाकर उसका उपयोग करते थे ताकि वे हजारों वर्ष की तपस्या बिना आहार के कर सकें। स्वर्ग लोक भी एक स्वर्ग लोक नहीं है। जिसमें इन्द्र देवता आदि है, वह एक स्वर्ग लोक है। इसके ऊपर भी स्वर्ग लोक है और इसके नीचे भी है। चौदह भुवन लोक हैं। मनुष्य लोक सातवें स्थान पर आता है। चौदहवें नम्बर पर ब्रह्म लोक है। बीच के पाँचों लोक स्वर्ग लोक के अन्तर्गत आते हैं। सबसे प्रथम स्वर्ग लोक पितृ लोक होता है उसमें पितृ रहते हैं। मनुष्य का एक मास पितरों का एक दिन होता है। मनुष्य के छः मास देवताओं का एक दिन होता है। मनुष्य के तैंतालीस लाख बीस हजार गुणा बहत्तर गुणा चौदह यह ब्रह्मा का एक दिन होता है।

जितने ऊपर के लोक हैं उसमें रहने वालों की आयु अधिक होती जाती है। हमारे सामने गुजरने वाली चींटी की आयु बहुत कम होती है। संसार में इतने विविध प्रकार के कीटक हैं कि मनुष्य की एक चुटकी बजाने के समय में उनकी तीन पीढ़ी समाप्त हो जाती हैं। वो पैदा हो जाते हैं उनकी सन्तान भी उत्पन्न हो जाती है और उनकी भी सन्तान उत्पन्न हो जाती है और फिर जितना समय एक चुटकी बजाने में लगता है उतने समय में तीनों पीढ़ियाँ समाप्त भी हो जाती हैं। उनके काल के लिए मनुष्य ही ब्रह्मा है। मनुष्य से बड़ी आयु पितरों की और पितरों से बड़ी आयु देवताओं की और उनसे बड़ी आयु ब्रह्मा जी की होती है।

9.21

ते तं(म्) भुक्त्वा स्वर्गलोकं(वँ) विशालं(ङ्),
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं(वँ) विशन्ति।
एवं(न्) त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना,
गतागतं(ङ्) कामकामा लभन्ते॥9.21॥

वे उस विशाल स्वर्गलोक के (भोगों को) भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आ जाते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम धर्म का आश्रय लिये हुए भोगों की कामना करने वाले मनुष्य आवागमन को प्राप्त होते हैं।

विवेचन:- स्वर्ग लोक में जो पैदा होता हैं, उन्हें देवता कहते हैं। इन्द्र, वरुण आदि को ही देवता नहीं कहते। जैसे मनुष्य लोक में सारे प्राणी मनुष्य ही कहलाते है, वैसे ही वे स्वर्ग लोक में पैदा होने वाले देवता कहलाते हैं। मनुष्यों में भी कैटेगरी होती है। हर एक मनुष्य विधायक या प्रधानमन्त्री, रक्षामन्त्री नहीं होता, लेकिन जिनको पोर्ट फोलियो मिल गया, वो विधायक, मन्त्री आदि हो जाते हैं। ऐसे ही देव लोक ने भी कोई अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र आदि देवता होते हैं।

भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! मनुष्य अपने पुण्यों के कारण बहुत लम्बे समय तक स्वर्ग लोक में देवता बन कर सुख भोगता है, लेकिन उसमें भी एक शर्त होती है। जैसे अख़बार में विज्ञापन आता है दो सौ रूपए में मोबाइल ले जाओ, पर एक तारांकित कर शर्त लगा दी जाती है जैसे दो सौ रूपए की किश्त रोज देनी पड़ेगी। अगर शर्त नहीं पढ़ी तो दो सौ रुपए में मोबाइल ला कर फँस जाते है। इसी तरह जब हम किसी पाँच तारा होटल में जाते हैं वहाँ हमारा क्रेडिट कार्ड स्वाइप किया जाता है और जब तक हमारे क्रेडिट कार्ड की लिमिट होती है तब तक हमें बढ़िया से बढ़िया सुविधा देते हैं। हम बिल्कुल राजा की तरह महसूस करते हैं, जो माँगते हैं, जब माँगते हैं, वह मिल जाता है। लेकिन जिस दिन हमारे क्रेडिट कार्ड का बैलेंस पूरा हो गया, तुरन्त रिसेप्शन से फोन आता है, आप या तो पैसा जमा करा दें या कमरा तुरन्त खाली करें। हम कहते हैं कि दस दिन से कितनी खातिरदारी कर रहे हैं, जो मैं माँगता हूँ, वही आप देते हैं। आज ऐसी कठोर बातें करते हो। कितनी भी विनती करें, कुछ घण्टे और रहने का प्रयास करें, तब भी वह सम्भव नहीं होता। हम सोचते हैं कि दस दिन तक मेरी सेवा में लगे रहने वाले इस होटल के लोग मुझे अतिरिक्त दो घण्टे भी रहने नहीं दे रहे। क्रेडिट कार्ड का बैलेंस खत्म होने पर दो घण्टे भी होटल का मालिक होटल में रुकने नहीं देता।

यही होता है जब हम स्वर्ग में जाते हैं, हमारे पुण्य का पूरा लेखा-जोखा लिया जाता है, जो वहाँ पर मिलने वाली सुविधाओं को निर्धारित करता है। भगवान कहते हैं कि इसी प्रकार स्वर्ग लोक में सुख भोगने पर एक शर्त लगी होती है। जैसे ही स्वर्ग में मनुष्य के पुण्यों का फल समाप्त होता है, उन्हें मृत्यु लोक में पुनः भेज दिया जाता है। तुम हमेशा स्वर्ग लोक में नहीं रह सकते। मृत्यु लोक में आने पर फिर पुण्य अर्जित करने पड़ेंगे तब पुनः से स्वर्ग लोक में जा सकते हो। इसलिए सकाम कर्म करने वाले मनुष्य जन्म और मरण के चक्र में फँसे रहते हैं।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे,
कृपायापारे पाहि मुरारे ॥21॥

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है :-

एहि तन कर फल बिषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

अर्थात् इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है। सांसारिक ही नहीं स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुःख देने वाला है। अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं। जब कहीं घूमने का दस दिन का प्रोग्राम बनाते हैं। वहाँ खूब मज़े करते हैं फिर जब पुनः घर आते हैं तो मन में यही विचार आता है कि फिर से वही दिनचर्या में जा कर लगना पड़ेगा। फिर वही चेहरे देखने पड़ेंगे।

भगवान कहते हैं, ये कभी नहीं हो सकता कि ये हमेशा रह जाए, अन्य सम्प्रदायों में मोक्ष की कल्पना नहीं है। भारत भूमि के अलावा जितने भी स्थानों पर अन्य सम्प्रदायों कि कल्पना है उसमें स्वर्ग व नरक की कल्पना है। सब अपने-अपने धर्मों के अनुसार उनको नामों से पुकारते हैं परन्तु भारतीय दर्शन में पूर्ण दर्शन है। जहाँ पर वेदों में कहा है कि इस स्वर्ग लोक से ऊपर जा कर भी उस जन्म-मरण के चक्र से छूटकर सदा के लिए मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। इस मोक्ष की कल्पना को सिर्फ भारतीय दर्शन में ही स्वीकार किया। भगवान कहते हैं कि मनुष्य में यह भोग इच्छा सूक्ष्म रूप से दीर्घकाल तक साधन करने पर भी विद्यमान रहती है।

गीता साधकों को भी यही लगता है कि अब हमने अपना सारा ध्यान गीता में लगा लिया है। अब हमें कुछ नहीं चाहिए, जो मिल जाए वो पहन लेते हैं, जो मिल जाए वो खा लेते हैं। लेकिन यह सब असत्य है क्योंकि भोग की इच्छा इतनी सूक्ष्म होती है कि सारी इच्छाएँ समाप्त होने पर भी अन्दर कुछ न कुछ पाने की सूची बनती रहती है। हम सब वासनाओं में बहुत गहराई से बन्धे होते हैं।

अर्जुन छठे अध्याय के अड़तीसवें श्लोक में पूछते है-:

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ (३८)

हे भगवान! आप कहते हैं कि भोग इच्छा नहीं छूट पाएगी और मैं मोक्ष भी प्राप्त नहीं कर पाऊँगा तो मेरी स्थिति छिन्न-भिन्न तो नहीं हो जाएगी। अर्जुन पूछते हैं कि कहीं ऐसा तो नहीं हो जाता इधर के रहे न उधर के रहे।

न ख़ुदा ही मिला न विसाल-ए-सनम
न इधर के हुए न उधर के हुए?

भगवान ने चालीसवें व इकतालीसवें श्लोक में कहा है, नहीं ऐसा नहीं होता।

श्रीभगवानुवाच
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।।6.40।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।6.41।।

यों तो तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी और अगर नहीं प्राप्त कर सके और तुम गीता पढ़ने लग गए। इस जीवन में गीता पढ़नी नहीं छूटी तो तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। योगभ्रष्ट पुरुष के रूप में किसी घर में जन्म होगा। अगर किसी का धार्मिक घर में जन्म होता है तो वह योग पुरुष होता है। पिछले जन्म की यात्रा को अपूर्ण छोड़कर इस जन्म में आगे इसे पूर्ण करने आए हैं।

भगवान कहते है कि अच्छे होने का दिखावा मत करो। जब कभी किसी परिवार में जायदाद का बँटवारा होता है तो दोनों पक्ष के लोग कहते हैं। उन्हें कुछ नहीं चाहिए, परन्तु बच्चों का क्या होगा? इसलिए बच्चों के लिए एक फुट की ज़मीन के लिए मैं मुकदमा करूँगा। बच्चों के नाम पर भोग इच्छा अन्दर विद्यमान रहती है। अपने को अच्छा धार्मिक मानने वाला, सत्सङ्गी मानने वाले अपने भाई पर थोड़ी सी जमीन जायदाद के लिए मुकदमा करते होंगे। उनके मन के लिए अन्दर, उनकी यह इच्छा कितनी बड़ी होगी? यह सब अपनी भोग इच्छा और वासना के कारण करते हैं, लेकिन बहाना बच्चों का ही लगाते हैं।

9.22

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां(यँ), ये जनाः(फ्) पर्युपासते।
तेषां(न्) नित्याभियुक्तानां(यँ), योगक्षेमं(वँ) वहाम्यहम्॥9.22॥

जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए (मेरी) भली भांति उपासना करते हैं, (मुझ में) निरन्तर लगे हुए उन भक्तों का योगक्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) मैं वहन करता हूँ।

विवेचन:- भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! कुछ लोग तो वह होते हैं जो सकाम कर्म करते हैं और स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं। दूसरे कुछ बिल्कुल ही अलग होते हैं। **अनन्य** - अन्य न हो। एक ही इष्ट हो। इष्ट के बारे में लोगों की धारणा भिन्न- भिन्न है। हम सब शिवजी के पास जाते हैं। महिलायें सावन में शिवजी के सोमवार के व्रत करती हैं। शिवजी की पूजा वर के लिए, धन के लिए निरोगी काया के लिए, शान्ति के लिए करती हैं। पूजा करके हम शिवजी को पाना चाहते हैं या जो हम वर माँग रहे हैं, वह पाना चाहते हैं।

संस्कृत में दो शब्द हैं एक इष्ट, दूसरा अनिष्ट। इष्ट जो हमें चाहिए, अनिष्ट जो हमें नहीं चाहिए। शादी के कार्डों में लिखा होता है कि इष्ट मित्रों के साथ आप जरूर पधारें अर्थात् जो आपके परम मित्र हैं, जो आपके समीप हैं उनके साथ शादी में जरूर पधारें। भागवत् के कार्ड में लिखा होता है कि इष्ट मित्रों के साथ पधार कर पुण्य का लाभ लें। कई बार कहते हैं कि बड़ा अनिष्ट हो गया अर्थात् जो चाहिए था, वह नहीं हुआ जो नहीं चाहिए था, वह हो गया। जो मुझे इष्ट था, वह मुझे मिलेगा अर्थात् जो मुझे चाहिए था, वह मुझे मिल गया। हम ईश्वर के पास जाकर कुछ माँगते हैं लेकिन भगवान नहीं माँगते हैं पर इष्ट भगवान नहीं होते। इष्ट, वह हो जाते हैं जो हम भगवान से माँगते हैं। जब हम धन, पुत्र और सम्पत्ति उपासना करके भगवान से माँगते हैं, धन, सम्पत्ति और पुत्र हमारे इष्ट होते हैं, भगवान नहीं होते। पर जब मैं शिवजी के पास जा कर यह कहता हूँ कि भगवान मुझे आपकी भक्ति मिले, नारायण मुझे आपकी भक्ति मिले, हे राम! जी मुझे आपकी भक्ति मिले, हे कृष्ण! मैं आपका भक्त बन जाऊँ। मैं कोई पदार्थ नहीं माँगता। मैं उनको उनसे माँगता हूँ, मेरे इष्ट वह नहीं हैं जो मैं उनसे माँगता हूँ। अनन्य-> न अन्य। मुझे कुछ और नहीं चाहिए मुझे भगवान ही चाहिए। मुझ आप से आप चाहिए, तब जाकर उपासना का निर्माण होता है। जब उपासना में ईश्वर से ईश्वर को माँगते हैं, ईश्वर की भक्ति माँगते हैं तो वह अनन्य उपासना बन जाती है।

जब अर्जुन भगवान के पास गए तो भगवान ने उसके पास दो प्रस्ताव रखे। एक तो स्वयं, दूसरी नारायणी सेना। अर्जुन इतने शूरवीर, पराक्रमी और बुद्धिमान थे कि उनको केवल भगवान चाहिए थे। नारायणी सेना का साथ मिले या बिना नारायणी सेना के मिले, क्योंकि अर्जुन भगवान को बहुत प्यार करते थे। परन्तु मनुष्य को अगर यह अवसर मिलता तो वह भगवान से भोग ही माँगता। इसलिए अर्जुन के इष्ट भगवान हुए और मनुष्य का इष्ट भोग हुआ। मनुष्य इसलिए सांसारिक बंधनों में फँस कर जन्म-मरण के बन्धन में फँसा रहता है।

मीराबाई कहती है- "मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई"

मेरे तो गिरधर गोपाल सब कह देते हैं लेकिन इसमें दूसरी पंक्ति महत्वपूर्ण है। दूसरा ना कोई' कहने की हमारी कोई ताकत नहीं है। हमें दूसरे में भी सब चाहिए और गिरधर गोपाल भी चाहिए। भगवान ने जब एक अक्षौहिणी सेना और स्वयं को रखा तो यह चुनाव अर्जुन के लिए नहीं था क्योंकि भगवान जानते थे कि अर्जुन को क्या चाहिए पर यह भगवान ने यह कथा मनुष्य के लिए रची है क्योंकि वह अर्जुन बनने का दिखावा करता है पर अन्दर से जो दुर्योधन होता है। हर बार वह नारायणी सेना को ही चुनता है। जीवन के हर क्षण में जब भगवान और भोगों में चुनाव करने को मिलता है तो जीवन में हमेशा भोग ही चुना है इसलिए मनुष्य के इष्ट कभी भगवान नहीं हुए। हमेशा भोग ही हुए, भोगों की प्राप्ति करके उनसे सुख भी भोगा। भगवान कहते हैं कि जो तुम मुझसे माँगोंगे वही तुम्हें मिलेगा। अर्जुन का भगवान को चुनने के कारण भगवान अपनी नारायणी सेना के हजार गुना ज़्यादा ताकत से अर्जुन के साथ खड़े हो गए। भगवान कहते हैं योग और क्षेम दो शब्द हैं। अप्राप्त की प्राप्ति योग है और जो प्राप्त है वह चला ना जाये वह क्षेम है। भगवान इच्छाएँ पूरी नहीं करते बल्कि आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। जो भगवान की निरन्तर भक्ति करता है उसका योगक्षेम भगवान करते हैं।

एक बार एक शिष्य गुरु के पास गया उसकी भक्ति भाव को देखकर गुरु ने कहा कि तेरी प्रीति बहुत अच्छी है। आठ-दस वर्ष बीतने पर शिष्य ने गुरु जी से पूछा अब आप मेरी प्रीति ने बारे में कुछ नहीं कहते तो गुरु कहने लगे

"जैसी प्रीति आरम्भ ने वैसी अन्त तक होए।
चला जाए बैकुण्ठ को पल्लू न पकड़े कोए।।"

आरम्भ में ऐसी प्रीति होना सरल है, पर अन्त तक प्रीति बनी रहना कठिन है। गीता साधक शुरू में कहते हैं, मेरा तो मोबाइल देखना छूट गया, जब से गीता की कक्षा लेनी आरम्भ की है पर कुछ समय में इन साधकों की सङ्ख्या घटने लगती है। अभी जो वर्तमान में हो रहा है वह सही है। लेकिन यह भक्ति का अनुभव लम्बे समय तक टिकता नहीं है। अगर कोई निरन्तर अभ्यास करेगा और वैराग्य को धारण करेगा तो दीर्घकाल यही प्रीति बनी रहेगी। भगवान ने कहा है कि भक्ति कभी टिकेगी नहीं, या तो बढ़ेगी या कम होगी। **प्रति क्षण वर्धमान** जो हर क्षण बढ़ती रहे, वह भक्ति है। एक भजन का गायन किया गया।

द्रौपदी ने भगवान को जब चीरहरण के समय बुलाया, उसके बाद भगवान से द्रौपदी बहुत लड़ी। भगवान आप बहुत देर से आए। अगर मेरा आँचल छूट जाता तो? इतनी देर मैं चिल्लाती रही और आपने इतनी देर लगा दी। भगवान बोले - मैं तो तुरन्त ही आया। द्रौपदी बोली कि आप झूठ बोल रहे हो, मैं इतना चिल्लाई उसके बाद भी इतनी देर से आए। भगवान ने कहा- नहीं, जिस समय तू मेरे ऊपर आश्रित हो गई उसी समय मैं आ गया। मैं तुझे याद दिलाता हूँ कि जब दु:शासन ने तेरा चीर खींचना शुरू किया था तब तुमने मुझे याद नहीं किया था, युधिष्ठिर को याद किया था। उसके बाद अन्य पतियों की ओर देखा था और पुकारा था, फिर भीष्म की ओर देखा और अन्य गुरुजनों को देखा, अन्य सभापतियों को देखा कि मुझे बचाओ, देखो! दु:शासन मेरा चीर हरण कर रहा है। मैं तो प्रतीक्षा कर रहा था कि मुझे कब बुलाओगी। मैं तो बाहर ही खड़ा था। इसके बाद भी नहीं बुलाया। तू सोचने लगी कि मैं तो क्षत्राणी हूँ। तूने कसकर अपना पल्लू पकड़ लिया। सारे शरीर की ताकत लगाकर तूने सोचा कि मैं अपने आपको बचा लूँ। दु:शासन भी क्षत्रिय था, बलवान भी था। आखिर में तुझे लगा कि मेरी शक्ति से नहीं बचेगा तब तुमने अपना पल्लू छोड़ा और मुझ गोविन्द को बुलाया। वैसे ही मैंने आकर तेरा पल्लू पकड़ लिया। मैं जब तक नहीं पकड़ता जब तक तुम पकड़े रहते हो। मैं जब तक डोरी नहीं पकड़ता जब तक डोरी तुम्हारे हाथ में रहती है।

हम डोरी अपने हाथ में ही पकड़े रहते हैं, छोड़ते नहीं हैं। भगवान कहते हैं जब तू डोरी छोड़ेगा तभी तो मैं पकडूँगा।

तुलसीदास जी ने यह भी कहा है-

बिगरी जनम अनेक को, सुधरै अबहीं आजु
होहि राम को नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु॥

तुलसी कहते हैं कि तू कुसङ्गति को और चित्त के सारे बुरे विचारों को त्यागकर, राम का बन जा और उनके नाम का जप कर। ऐसा करने से तेरी अनेक जन्मों की बिगड़ी हुई स्थिति अभी सुधर सकती है। जो आवश्यक है वह तुझे प्राप्त होगा, जो आवश्यक है उसकी रक्षा होगी।

9.23

येऽप्यन्यदेवता भक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय, यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।9.23।।

हे कुन्तीनन्दन! जो भी भक्त (मनुष्य) श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओं का पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं, (पर करते है) अविधिपूर्वक अर्थात् देवताओं को मुझसे अलग मानते हैं।

विवेचन:- अगर हमारे घर में चोरी हो जाती है और हमारी जान पहचान किसी बड़े मन्त्री से होती है तब हम मन्त्री के पास रिपोर्ट लिखवाने जाते हैं। तब मन्त्री कहता है कि पहले थानेदार से बात करो क्योंकि तुम्हारा काम वही करेगा तो हमें मुख्यमन्त्री को जानने के बाद भी थानेदार को फोन करना ही पड़ता है। उसके बाद हम मुख्यमन्त्री को छोड़कर थानेदार को पूछने लग जाते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि चोरी की कार्रवाही थानेदार ही करेगा परन्तु इसको नियुक्ति मुख्यमन्त्री ही करता है।

इसी प्रकार मनुष्य भगवान के साथ व्यवहार करता है। देवताओं की पूजा करना अज्ञानता पूर्वक की गई भक्ति है और देवताओं को जब सब कुछ मानने लगता है तो यही गलती मनुष्य करता है क्योंकि वह भूल जाता है कि देवता को शक्ति भगवान के द्वारा ही दी गई है।

9.24

अहं(म्) हि सर्वयज्ञानां(म्), भोक्ता च प्रभुरेव च।

न तु मामभिजानन्ति, तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।9.24।।

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ; परन्तु वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते, इसी से उनका पतन होता है।

विवेचन:- हे अर्जुन! सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता व स्वामी मैं ही हूँ, पर मुझ परमेश्वर को जो तत्व रूप से नहीं जानते, वो पुर्नजन्म को प्राप्त होते हैं। देवताओं को पूजते हैं स्वर्ग लोको में जाते हैं फिर नीचे आते हैं फिर मनुष्य बनते हैं फिर देवताओं को पूजते हैं फिर स्वर्ग में जाते हैं। आगे भगवान कहते हैं:-

9.25

यान्ति देवव्रता देवान्, पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।9.25।।

(सकाम भाव से) देवताओं का पूजन करने वाले (शरीर छोड़ने पर) देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों का पूजन करने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूत-प्रेतों का पूजन करने वाले भूत-प्रेतों को प्राप्त होते हैं। (परन्तु) मेरा पूजन करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

विवेचन:- देवता को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त कर लेते हैं। भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त कर लेते हैं। पितरों को पूजने करने वाले पितरों को प्राप्त कर लेते हैं और जो मेरी भक्ति करता है, मेरा पूजन करता है, वह मुझको प्राप्त कर लेता है और वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता। भगवान कहते हैं कि मुझे प्राप्त करने का अर्थ यह नहीं है कि देवताओं की उपासना नहीं करनी है। देवताओं की उपासना भगवद् भाव से करनी चाहिए। देवता हमें शक्ति प्रदान करते हैं, जैसे थानेदार का काम चोरी की रिपोर्ट लिखकर इसकी अच्छी तरह जाँच पड़ताल करके चोरी का माल पकड़वाना होता है।

हम देवताओं को यज्ञ के द्वारा आहुति प्रदान करते हैं तो देवता वर्षा करवा कर ऊपर से वनस्पति को देते हैं लेकिन भगवान ने चतुर्थ अध्याय में कहा है कि देवता तुम्हें अन्न प्रदान करते हैं तो देवताओं को आहुति दिए बिना अन्न का प्रयोग करते हैं तो वह चोरी कहलाती है।

9.26

पत्रं(म्) पुष्पं(म्) फलं(न्) तोयं(यँ), यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं(म्) भक्त्युपहृतम्, अश्नामि प्रयतात्मनः॥9.26॥

जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य एवं अनायास प्राप्त वस्तु) को प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस (मुझमें) तल्लीन हुए अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए उपहार (भेंट) को मैं खा लेता हूँ अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।

विवेचन:- पाण्डवों के वनवास काल में जब दुर्वासा ऋषि भोजन के लिए आए थे तब द्रौपदी के पास आकर कृष्ण भगवान जी ने उनसे अक्षय पात्र माँगा तो उसमें से एक पत्र भगवान ने खा लिया। सिर्फ एक पत्र खाने से हजार ऋषियों ने भोजन करने से मना कर दिया। द्रौपदी के एक पत्र को भी भगवान को भी बड़े प्यार से स्वीकार करते हैं। गजेंद्र का एक पुष्प स्वीकार करते हैं। शबरी के झूठे बेर प्यार से स्वीकार किये। भगवान को भक्ति, प्रेम और श्रद्धा से जो भी अर्पण करते हैं उसे भगवान सम्मान और प्यार से स्वीकार करते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी में राजस्थान में धौला कुँआ नाम की एक जगह में रहने वाला धन्ना जाट बहुत भोला था। भाइयों के बीच सम्पत्ति का बँटवारा होने पर, इसके भोलेपन को देखते हुए, एक गाय, एक छोटा सा घर और माँ इसके हिस्से में आई। भोला धन्ना उसमें भी खुश था। मन्दिर के पुजारी की नजर अच्छा दूध देने वाली धन्ना की गाय पर थी। ठाकुर जी को दूध चढ़ाने के नाम पर उन्होंने किसी तरह धन्ना से रोज दो-तीन लोटे दूध अपने लिए पाने की व्यवस्था बना ली। एक बार पुजारी जी को कहीं बाहर जाना था, उन्होंने धन्ना के यहाँ पहुँचकर दूध न भेजने का सन्देश दिया। धन्ना आश्चर्यचकित हो गया, पुजारी जी बाहर जा रहे हैं तो

क्या भगवान को दूध नहीं मिलेगा? यह सोच कर वह व्याकुल हो गया। बोला, पुजारी जी मैं ही दूध चढ़ा आऊँगा। पुजारी जी घबरा गए, बोले नहीं-नहीं, तुम ठहरे जाट, तुम मन्दिर में कैसे जा सकते हो? बहुत समय तक बातचीत होने के बाद पुजारी जी बोले ठीक है, मैं ही भगवान को तुम्हारे पास छोड़ जाता हूँ। लेकिन उनकी सेवा करना बहुत कठिन काम है, तुम्हें उनकी बहुत देखरेख करनी होगी, नहा धोकर बिना खाए पिए उन्हें भोग चढ़ाना होगा। कर पाओगे, यह सब कुछ? भगवान मेरे घर आएँगे, इस आनन्द में लीन धन्ना बोला, हाँ- हाँ जरूर करूँगा। पुजारी जी चल पड़े, रास्ते में एक पत्थर को उठाया उसे धोकर, चन्दन का टीका लगाकर, अच्छे कपड़े में लपेट कर धन्ना के यहाँ ले गए। धन्ना आश्चर्यचकित, इतने छोटे से भगवान कितना दूध पीते होंगे? पोल खुलने के भय से पुजारी जी ने झट उसे ठाकुर जी के प्रति कोई भी आशङ्का व्यक्त करने से मना किया और उनके लौटने तक ठाकुर जी का ख्याल रखने को कहा। धन्ना बड़ा खुश। पूरे भक्ति भाव से ठाकुर जी की सेवा में लग गया। सुबह - सुबह उठकर धन्ना बिना कुछ खाए पिए, नहा धोकर ठाकुर जी की सेवा करने लगा। माँ से कहकर अच्छा खाना बनवाया, ठाकुर जी को भोग लगाया और बैठ कर प्रतीक्षा करने लगा कि वे कब भोग लगाएँगे? ठाकुर जी कहाँ खाने वाले थे।

धन्ना को लगा मुझसे ही कोई चूक हुई है, इसलिए ठाकुर जी खा नहीं रहे। याद कर कर के पुजारी जी की बताई सारी बातें करता रहा। ठाकुर जी ने खाना नहीं खाया। धन्ना परेशान, शाम को फिर नहा धोकर भोग की दूसरी थाली माँ से बनवा कर ठाकुर जी के सामने बैठ गया। ठाकुर जी कहाँ खाने वाले थे। लेकिन भाव विभोर अबोध धन्ना भी अपनी जिद पर अड़ गया। सुबह से शाम तक भूखा बैठा धन्ना वैसे ही सो गया। दूसरे दिन फिर यही क्रम चला, ठाकुर जी ने भोग नहीं लगाया। धन्ना बहुत परेशान। तीसरे दिन धन्ना बहुत ही व्याकुल हो गया। उसे लगा मैं जाट हूँ, इसलिए ठाकुर जी मेरे हाथ का भोजन नहीं खा रहे हैं। जब ठाकुर जी के लिए मैं इतना अप्रिय हूँ तो इस शरीर का क्या फायदा? यह सोचते हुए थके हारे अत्यन्त व्यथित अवस्था वाले धन्ना ने, ठाकुर जी के पैरों तले अपना सिर दे मारा। रक्त बहने लगा पर ठाकुर जी ने भोग नहीं लगाया। फिर सिर दे मारा.... फिर सिर दे मारा.... इस तरह दो-तीन बार करने पर अचानक ठाकुर जी प्रकट हुए। अपने कोमल हाथों से धन्ना के सिर का रक्त पोंछते हुए बोले, मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था, तुम्हारी इस भावविभोर भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ। कहते हैं उसके बाद कई दिन तक ठाकुर जी धन्ना के घर रहे। पुजारी जी लौटे तो यह घटना सुनकर अत्यन्त लज्जित हुए। सोचने लगे मैं तो इतने दिन तक भगवान को पत्थर समझता रहा लेकिन इस धन्ना ने पत्थर में भगवान को देख लिया।

उस गाँव में धन्ना सेठ के नाम से मन्दिर और गुरुद्वारा भी बना। भगवान कहते हैं कि मैं खाता हूँ यदि खिलाने वाला हो कोई, भगवान जी के आगे भोग रखते हैं और उठाकर ले आते हैं। अगर भगवान का मन भी हो तो उससे पहले ही उठाकर हम ले आते हैं। प्रेम से, प्रीति से, श्रद्धा से अगर भगवान को भोजन कराओ तो भगवान अवश्य करते हैं। भक्त का अर्पण किया हुआ पदार्थ भगवान स्वीकार करते हैं। भगवान को जब भी भोग लगाइए। बड़े प्रेम से लगाइए। थोड़ी देर वहाँ खड़े रहिए, भगवान उसको सूक्ष्म भाव से ही स्वीकार करेंगे।

9.27

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।9.27।।

हे कुन्तीपुत्र ! (तू) जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है (और) जो कुछ तप करता है, वह (सब) मेरे अर्पण कर दे।

विवेचन:- हे अर्जुन! तुम जो भी कर्म करते हो, वह तुम मुझको अर्पण कर दो।

9.28

शुभाशुभफलैरेवं(म्), मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तो मामुपैष्यसि।।9.28।।

इस प्रकार (मेरे अर्पण करने से) कर्म बन्धन से और शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मों के फलों से (तू) मुक्त हो जायगा। ऐसे अपने सहित सब कुछ मेरे अर्पण करने वाला (और) सबसे सर्वथा मुक्त हुआ (तू) मुझे प्राप्त हो जायगा।

विवेचन:- भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! संन्यास लेने के लिए गेरुआ वस्त्र पहनकर घर का त्याग नहीं करना होता। जिस भी स्थिति में, जिस भी स्थान से, जहाँ पर तू है, वहीं से अपने कर्म को भगवान को अर्पण करेगा तो भी तेरे कर्म सन्यास कर्म हो जाएँगे।

9.29

समोऽहं(म्) सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां(म्) भक्त्या, मयि ते तेषु चाप्यहम्।।29।।

मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समान हूँ। (उन प्राणियों में) न तो कोई मेरा द्वेषी है (और) न कोई प्रिय है। परन्तु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मुझ में हैं और मैं भी उनमें हूँ।

विवेचन:- भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! कोई कितना भी बुरा हो, कितना भी गलत काम कर ले, कितना भी पापी हो, मुझे न अप्रिय है न कोई प्रिय, मैं सबको समान रूप से देखता हूँ। लेकिन साथ में एक शर्त भी रखते हैं जो मुझे प्रेम से भजते हैं वो भक्त मुझमें और मैं उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है। जो सन्त भगवान को अत्यन्त प्रेम से भजते हैं, भगवान उनमें प्रकट हो जाते हैं। इसलिए हमारे भारत में गुरु के चित्र मन्दिर में रखने की परम्परा है।

9.30

अपि चेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः(स्), सम्यग्व्यवसितो हि सः।।9.30।।

अगर (कोई) दुराचारी से दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है (तो) उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।

विवेचन:- मनुष्य में सामान्यत: बुरी आदत होती है कि अच्छे लोगों में भी दोष दर्शन करते हैं। कई बार वर्तमान में उनमें दोष नहीं होते पर पुराने दोषों की चर्चा करते हैं। भगवान कहते हैं दुराचारी में भी सबसे दुराचारी अगर अनन्य भाव से मुझको भजता है तो वह साधू हो जाता है। पुण्य या पाप दोनों छोड़ दे और आगे कोई गलत कार्य न करे और मेरी भक्ति करने लग जाए, वह साधु है।

9.31

क्षिप्रं(म्) भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिं(न्) निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि, न मे भक्तः(फ्) प्रणश्यति।।9.31।।

(वह) तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है (और) निरन्तर रहने वाली शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन ! मेरे भक्त का पतन नहीं होता (ऐसी तुम) प्रतिज्ञा करो।

विवेचन:- जो भगवान की भक्ति करता है, वह कभी व्याकुल नहीं होता क्योंकि भगवान ने उसका दायित्व लिया है। अगर किसी व्यक्ति से कोई गलती भी हो जाए या कोई गड़बड़ हो जाए तो भगवान उसको क्षमा कर देते हैं क्योंकि भगवान ने उसका दायित्व लिया है और दायित्व भगवान उसी का लेते हैं जो भगवान की भक्ति करता है।

9.32

मां(म्) हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः(फ्) पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः(स्), तेऽपि यान्ति परां(ङ्) गतिम्।।9.32।।

हे पृथानन्दन ! जो भी पाप योनि वाले हों (तथा जो भी) स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र (हों), वे भी सर्वथा मेरे शरण होकर निःसन्देह परमगति को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचनः- साधारण रूप से पढ़ने पर ऐसा लगता है कि स्त्री, वैश्य, शुद्र और चाण्डाल एवम् पाप योनि वाले, सबको भगवान ने एक रेखा में लाकर खड़ा कर दिया। सब पाप योनि के बराबर हो गए। भगवान का आशय इसके बिल्कुल विपरीत है। वे कहते हैं, हे अर्जुन! मेरी भक्ति के बारे में लोगों ने गलत धारणा बना रखी है क्योंकि आज से पचास वर्ष पूर्व यही कहा जाता था कि स्त्रियों को भगवद् प्राप्ति का अधिकार नहीं है, उनका कार्य केवल पति की, सास-ससुर की सेवा करना है। भगवान ने इस श्लोक में उसका निराकरण किया। मेरी भक्ति के लिए कोई भी अयोग्य नहीं है चाहे स्त्री हो, चाण्डाल हो, वैश्य हो या शूद्र हो, उन सब को भी भक्ति का अधिकार है ही परन्तु कोई पशु योनि में होकर भी मेरी भक्ति करता है तो वह भी मुझे ही प्राप्त करता है।

9.33

किं(म्) पुनर्ब्राह्मणाः(फ्) पुण्या, भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं(म्) लोकम्, इमं(म्) प्राप्य भजस्व माम्।।9.33।।

(जो) पवित्र आचरण वाले ब्राह्मण और ऋषिस्वरूप क्षत्रिय भगवान् के भक्त हों, (वे परम गति को प्राप्त हो जायँ) इसमें तो कहना ही क्या है। (इसलिये) इस अनित्य (और) सुखरहित शरीर को प्राप्त करके (तू) मेरा भजन कर।

विवेचनः- भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! मनुष्य और प्राणी मात्र ही मेरी भक्ति करके मुझको प्राप्त नहीं करते। कोई भी, किसी भी योनि का हो, जो मेरी भक्ति को करेगा, वह मुझे प्राप्त करेगा। अतः तू सुख रहित, क्षणभङ्गुर इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरन्तर मेरा भजन कर।

9.34

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवम्, आत्मानं(म्) मत्परायणः।।9.34।।

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मन वाला हो जा, मेरा पूजन करने वाला हो जा (और) मुझे नमस्कार कर। इस प्रकार अपने-आपको (मेरे साथ) लगाकर, मेरे परायण हुआ (तू) मुझे ही प्राप्त होगा।

विवेचनः- यह श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है। गीता में कुल अट्ठारह अध्याय हैं। नौवें अध्याय के चौंतीसवें श्लोक पर सम्पूर्ण गीता का यह ठीक मध्य है। इसी चौंतीसवें श्लोक को अठारहवें अध्याय के पैंसठवें श्लोक में पुनः दोहराया गया है। वेदव्यास जी ने एक लाख श्लोकों में वासुदेव उवाचः, कृष्ण उवाच कहा है लेकिन गीता के इन अट्ठारह अध्यायों के सात सौ श्लोकों में वेद व्यासजी ने सिर्फ यही लिखा कि श्री भगवानुवाच क्योंकि इन श्लोकों में भगवान भगवद् स्वरूप में बोले और परम स्वरूप में बोले। भगवान कहते हैं कि जिनके इष्ट राम हैं वे राम के भक्त बनें, जिनके इष्ट कृष्ण हैं वे कृष्ण के भक्त बनें, जिनके इष्ट विष्णु हैं, वे नारायण के भक्त बनें और जिनके इष्ट शिवजी हैं, वे शिवजी के भक्त बनें। भगवान कहते हैं, जो जिस स्वरूप में अपने इष्ट की पूजा करते हैं, मैं तुम्हें उसी रूप में, ब्रह्म स्वरूप में दर्शन दूँगा, प्राप्त हो जाऊँगा। भगवान वचन दे रहे हैं कि जो पूरी तरह मुझ में समर्पित होता है, मैं उसके पाप और पुण्य का नाश कर देता हूँ।

प्रश्नोत्तर सत्रः-

प्रश्नकर्ताः- राजश्री दीदी
प्रश्नः- भागवत महापुराण और श्रीमद्भगवद्गीता में क्या अन्तर है?

उत्तर:- श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के एक लाख श्लोकों में अट्ठारह पर्व हैं। उसमें भीष्म पर्व के अट्ठारह अध्याय पच्चीसवें अध्याय से बयालीसवें अध्याय तक छाँट कर अलग करके एक अलग ग्रन्थ बनाया गया है। यह अलग लिखा गया ग्रन्थ नहीं है। यह महाभारत का भाग है। श्रीमद्भागवत महापुराण यह अट्ठारह पुराणों में सबसे बड़ा पुराण है। सन्त जो सात दिन की कथा करते हैं, जो शुक देव जी ने परीक्षित जी को सुनाई वह श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा है। इसमें श्रीकृष्ण जी की जन्म से लेकर सभी लीलाएँ हैं, उनका चरित्र है जबकि श्रीमद्भगवद्गीता भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद है, उपदेश है।

प्रश्नकर्ता:- किरण दीदी
प्रश्न:- कारण शरीर क्या होता है?
उत्तर:- कारण शरीर स्थूल शरीर में जीवात्मा के साथ जुड़ कर रहता है। सूक्ष्म शरीर मन, बुद्धि और चित्त से मिल कर बनता है। कारण शरीर एक चिप की तरह होता है जो करोड़ों जन्मों के हमारे पाप और पुण्य सञ्चित कर अपने अन्दर रखता है। वह जीवात्मा से पृथक है।

प्रश्नकर्ता:- सूर्य कान्त भैया
प्रश्न:- मोक्षदा एकादशी कल से प्रारम्भ हो गई थी, फिर आज क्यों मनाई गई?
उत्तर:- हमारे यहाँ उदया तिथि मानी जाती है। सभी पर्व उस तिथि पर मनाए जाते हैं जो सूर्योदय से प्रारम्भ होती है। गृहस्थों के लिए इसे ही उत्तम बताया गया है।

प्रश्नकर्ता:- अजित भैया
प्रश्न:- अट्ठारहवें अध्याय के छियासठवें श्लोक में भगवान ने अर्जुन को कहा है कि मैं तेरे समस्त पाप नष्ट कर दूँगा। क्या यह बात सामान्य जनों के लिए भी लागू होती है?
उत्तर:- भगवान मात्र पाप के लिए ही नहीं अपितु पुण्यों को भी मिटाने के लिए कह रहे हैं। वह कहते हैं कि मैं तेरे समस्त पापों और पुण्यों को नष्ट कर दूँगा। जिससे तुझे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। मोक्ष की प्राप्ति तभी होगी जब आपके पाप और पुण्य का समस्त लेखा-जोखा शून्य हो जाएगा अन्यथा आपको पाप हो या पुण्य हो उसके फल को भोगने के लिए जन्म लेना ही पड़ेगा। मोक्ष प्राप्त नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता:- राकेश भैया
प्रश्न:- क्या आत्मा की शान्ति जीते जी भी हो सकती है या मरने के बाद ही आत्मा की शान्ति होती है?
उत्तर:- आत्मा की शान्ति का अर्थ है कि आत्मा को बुरी योनियों में न जाना पड़े। आत्मा निर्लिप्त होती है, उसे न शान्ति होती है न अशान्ति।

प्रश्नकर्ता:- पुष्पलता दीदी
प्रश्न:- कर्तापन का भाव कैसे छूटेगा?
उत्तर:- जब तक हम स्वयं को शरीर मानेंगे तब तक कर्तापन का भाव नहीं जाएगा। जब हम यह समझ लेंगे कि ये शरीर मैं नहीं हूँ, तब कर्तापन का भाव भी नहीं रहेगा। जब भगवान की शरण में चले जाएंगे और कहेंगे कि हे नाथ मैं तेरा हूँ जैसा भी हूँ तेरा हूँ, तब कर्तापन का भाव मिट जाएगा।

प्रश्नकर्ता:- दिव्या दीदी
प्रश्न:- पाप और पुण्य दोनों नष्ट होने पर ही मोक्ष मिलता है। तो यदि हम पाप करना बन्द कर दें तो भी पुण्य तो रहेंगे ही तो फिर मोक्ष कैसे प्राप्त होगा।
उत्तर:- पाप बन्द करना प्रथम चरण है। उसके बाद पुण्य कर्म सहज निष्काम कर्म में परिवर्तित हो जाता है।

प्रश्नकर्ता:- कमलकान्त भैया
प्रश्न:- चञ्चल मन को किस प्रकार नियन्त्रण में करें?
उत्तर:- काम, क्रोध और रजोगुण के कारण मन चञ्चल होता है। भगवान ने निरन्तर अभ्यास से मन को नियन्त्रित करने को कहा है।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।6.35।।

प्रश्नकर्ता:- शिवाङ्गी दीदी
प्रश्न:- एकादशी व्रत के नियम बताइए।
उत्तर:- दशमी के सांयकाल को फलाहार करना। एकादशी को निराहार और निर्जल रहना। द्वादशी को फलाहार करना और सांयकाल अन्न ग्रहण करना। एकादशी को रात को सोना नहीं है और द्वादशी को भी दिन में सोना नहीं है। भगवान का भजन निरन्तर करते रहना। यह तो पूर्ण नियम है। यदि आपको प्रारम्भ करना है तो एकादशी के दिन फलाहार करके भजन करते हुए कर सकते हैं। वैष्णवों को एकादशी करना अनिवार्य है। अधिक नियम पालन से करते हैं तो अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है।

प्रश्नकर्ता:- त्रिदेश्वरी दीदी
प्रश्न:- क्या हमें देहदान करना चाहिए?
उत्तर:- देहदान शास्त्रों में पूर्णतः वर्जित है। अंग दान आप कर सकते हैं। देह दान में आपकी देह की बहुत दुर्गति होती है।

प्रश्नकर्ता:- श्रेया दीदी

प्रश्न:- क्या घर मे पूर्वजों की फ़ोटो नहीं रखनी चाहिए?
उत्तर:- आप घर मे पूर्वजों की फ़ोटो रख सकते हैं।आजकल जो बातें व्हाट्सएप इत्यादि पर आती हैं वे सब मिथ्या हैं। पितृ देवता होते हैं और पूजनीय होते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'राजविद्याराजगुह्ययोग' नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||